



विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१

पोस्टल रजि. नं. NSK - 64

वर्ष ७ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२१ • पौष पूर्णिमा [शक] • दि. २४-०९-१९७८ • अंक ८

प्रवचन प्रवाह

१ (घ)

सूक्ष्म सांस की प्रत्यक्षानुभूति करते-करते हम शरीर संबंधी सूक्ष्म सच्चाइयों के साक्षीकरण की ओर बढ़ेंगे। नया-नया साधक सहज स्वाभाविक सांस के आवागमन को महसूस नहीं कर सकता। इसीलिए कहते हैं कि वह कुछ देर जरा जोर से सायास सांस लेकर सांस की जानकारी करे। जरा जोर से। बहुत जोर से नहीं। बस इतने ही जोर से जितने से कि स्वयं को जानकारी हो सके। परंतु पास बैठे साधक तक को इस तेज सांस का पता न चले। कहीं भस्त्रिका वाला धुंआधार सांस लेना न शुरू कर दें। इस प्रकार जरा जोर से लिए गए सांस की जानकारी रखता-रखता साधक अनायास आने-जाने वाले सहज स्वाभाविक सांस की जानकारी की ओर बढ़ता है। फिर यह भी जानने लगता है कि सहज सांस बाई नासिका में से आ जा रहा है अथवा दाहिनी नासिका में से। और फिर शनैः शनैः यह भी जानने लगता है कि आता-जाता हुआ सांस नासिका के इस तिकोणे हिस्से में कहां-कहां टकरा रहा है, कहां कहां छू रहा है। नासिका की भीतरी दीवारों को अथवा नासिका के बाहरी छल्लों को थवा नासिका के नीचे, ऊपर वाले होठ के ऊपर किसी हिस्से को छू रहा है। सांस के स्पर्श की जहां-जहां स्पष्ट अनुभूति होती है, साधक उसका साक्षीकरण करता चलता है और यों एक के बाद एक दिन बीतते बीतते वह स्थूल से सूक्ष्मता की ओर बढ़ता हुआ अपने शरीर संबंधी सूक्ष्मतम सच्चाइयों का साक्षीकरण करने में सफल हो जाता है।

सांस देखते-देखते जैसे शरीर का, वैसे ही मन का भी साक्षीकरण शुरू हो जाता है। यों तो किसी साधक को आज यह नहीं कहा गया था कि वह अपने मन का निरीक्षण करे, पर सांस देखते-देखते मन का निरीक्षण शुरू हो ही तो गया। सभी साधकों ने अपने मन का रंग-रंग देख लिया। चौबीस घंटे बीतते-बीतते सब ने देख लिया कि सचमुच मन कितना चंचल है! कितना चपल है! कितना बातूनी है! कितना वाचाल है! क्षण भर के लिए भी स्थिर नहीं रहता, अडोल नहीं रहता। पल भर के लिए भी शांत नहीं रहता। अबोल नहीं रहता। बोलता ही रहता है, डोलता ही रहता है। मन की यह एक सच्चाई सब के सामने प्रकट हुई। अनुभूतियों के बल पर प्रकट हुई। मन के साक्षीकरण का काम शुरू हुआ।

धम्म वाणी

दीघो रस्सो च अस्सासो पस्सासोपि च तादिसो ।
चत्तारो वण्णा वत्तन्ति नासिक ग्गोव भिक्खुनो ॥
विमुद्धिमग्ग ।

लंबा आश्वास और लंबा प्रश्वास, ओछा आश्वास और ओछा प्रश्वास—यह चारों साधक के नासिकाग्र पर (उसकी जानकारी में) प्रवर्तित होते रहते हैं।

मन भागता है यह एक सच्चाई। पर मन कहां भागता है? यह एक दूसरी सच्चाई सब के सामने आई। कहां भागता है? जहां-जहां जिन-जिन बातों में भागा है उन सब की कोई लिस्टफहरिस्त बनाना चाहें तो असंभव हो। पर इस भागदौड़ के दो मोटे-मोटे विभाजन तो किए ही जा सकते हैं। हर एक का मन जब-जब भागा है तब-तब या तो भूतकाल की किसी याद में अथवा भविष्य की किसी कामना व आशंका में ही भागा होगा। मन भागता है तो अतीत में या अनागत में। भूत में या भविष्य में। भूतकाल की कोई बात याद आयी... उसने ऐसा-ऐसा कह दिया था। मेरा घोर अपमान कर दिया था। उस वक्त मुझसे कुछ बोलते नहीं बना। मैं कोई उत्तर न दे सका। अब भविष्य में कभी ऐसा हो तो यों उत्तर दूंगा, ईंट का जवाब यों पत्थर से दूंगा। बोलने वाले का यों मुंह तोड़ दूंगा। आदि आदि। देखा, कैसे भूतकाल से भविष्य की ओर छलांग लगाकर पहुंच गया। अतीत का चिंतन जुड़ गया अनागत के साथ। इतने में फिर भूतकाल की कोई बात याद आ गई। फिर लोट पलोट लगाने लगा भूत में और कैसे वही बात फिर अनागत से जा जुड़ी। लगा लगाने लोटप लोटभविष्य में। यों भूत में रमण करता है या भविष्य में रमण करता है। विगत में रमण करता है अथवा अनागत में रमण करता है। पर वर्तमान में तो टिकता ही नहीं। अपने-अपने मन के इस स्वभाव को सबने देखा। इस क्षण क्या हो रहा है? इसे जानने की इसकी जरा भी चेष्टा नहीं। इस क्षण की जो सच्चाई है इस में जरा भी टिकना नहीं चाहता। दिन भर सांस निरीक्षण का अभ्यास करते-करते प्रत्येक साधक ने अपने मन का भी थोड़ा-बहुत निरीक्षण कर ही लिया। देख लिया मन का यह स्वभाव

कि वह वर्तमान में रहना ही नहीं चाहता। आदत पड़ गई है। अपने ही बनाए हुए स्वभाव शिकंजे में जकड़ गया है। जब देखो तब भटकता ही रहता है, भूत में या भविष्य में। वर्तमान में रहना ही नहीं चाहता। रह भी नहीं सकता। आदत का गुलाम जो हो गया है। और इसीलिए जीना नहीं आता। क्यों कि जीना तो होगा वर्तमान में। भूत तो चला गया। वापस आनेवाला नहीं। संसार की समस्त संपदा देकर भी हम बीते हुए क्षण को पुनः बुलाकर उस में जीना चाहें तो यह संभव नहीं होगा। और भविष्य जब आयेगा तब आयेगा। इस क्षण तो नहीं ही है। जब तक भविष्य वर्तमान नहीं बन जाता, तब तक हम उस में जी नहीं सकते। हमें जीना तो इस क्षण में ही है और देख लिया अपने मन का स्वभाव कि वह इस क्षण में रहना ही नहीं चाहता। जीना नहीं चाहता।

जब कभी इस क्षण की कोई सच्चाई हमारे सामने प्रकट होती है तो यह बावला मन उसका संबंध झट किसी पुराने अनुभव या भावी कल्पना में जोड़ लेता है। कोई पुरानी याद इस क्षण की सच्चाई पर बादल बनकर छा जाती है। भविष्य की कोई आशा-आकांक्षा या आशंका उस पर धुएँ की तरह छा जाती हैं। इस क्षण की सच्चाई धूमिल हो जाती है। प्रतिक्षण उड़ते रहते हैं भूत और भविष्य के बादलों में। वर्तमान की धरती पर कदम रखना ही नहीं चाहते। यही कारण है कि जीवन जीना नहीं जानते। हमेशा असंतुलित रहते हैं, उत्तेजित रहते हैं, उद्विग्न रहते हैं, रुग्ण रहते हैं।

मन चंचल है और भूत तथा भविष्य में रमण करने का आदी हो गया है, इन दो सच्चाइयों के अतिरिक्त इस चौबीस घंटे की साधना में ही हर साधक के सामने एक और सच्चाई उभरकर सामने आयी। वह यह कि मन किस प्रकार मैल से मलीन ही रहता है। सबने देखा होगा अन्यथा ध्यान से देखेंगे तो मन में तीन प्रकार के मैल बहुत साफ-साफ नजर आएंगे। मन की एक अवस्था यह देखी होगी कि जब कभी कोई बात उभरती है, चाहे भूत की या भविष्य की, तो उसका कोई सिलसिला नहीं बधने पाता। उसका कोई तारतम्य नहीं होता। बात शुरू हुई और बीच में ही कट गई। एक वाक्य आरंभ हुआ और बीच में ही कोई दूसरा आ जुड़ा। कोई दूसरी बात आ गई, जिसका पहली बात से सिर-पैर का भी संबंध नहीं। यूँ बिना किसी तारतम्य के, बिना किसी सिलसिले के, धूमकेतु की तरह कितनी बातें आयी और गयी होंगी। बिना सिर-पैर की फजूल बातें। बिना तरतीब की निकम्मी बातें। मन की यह अवस्था बिलकुल पागलपन की अवस्था। मोह-विमूढ़ित अवस्था। आखिर हम किसी व्यक्ति को पागल क्यों कहते हैं? ऐसे किसी व्यक्ति को ही पागल कहेंगे जो कि अपने विचारों का तारतम्य खो बैठा है। सिलसिलेवार कोई बात सोच ही नहीं सकता। एक उदाहरण। कोई पागल व्यक्ति चार दिनों से भूखा है। उसे देखकर किसी के मन में कठुणा उपजी और उसने थाली भरकर भोजन उसके सामने रख दिया। भूखा तो था ही। भोजन देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। बैठ गया खाने। एक कौर तोड़कर मुख तक ले जा रहा है। इतने में विचारों का तारतम्य टूट गया। कोई और विचार मन में आने लगे। सोचने लगा मैं गुसलखाने में नहा रहा हूँ। यह साबुन की टिक्रिया मेरे हाथ में है। रगड़-रगड़कर नहाना चाहिए। और लगा उस कौर को अपने शरीर पर जोर-जोर से मलने। यह काम पूरा ही

नहीं हुआ कि एक अन्य विचार आ गया मन में। यह चारो ओर मेरे दुश्मन मुझे घेरे हुए हैं। इससे पहले कि ये मुझे मार डालें, मैं इन्हें मारकर खत्म कर लूँ और अपने आपको बचा लूँ। मेरे सामने यह पत्थर हैं, इंट है हथगोले हैं। इनको दुश्मनों पर फेंकू और फेंक दिया सारा का सारा भोजन। रह गया भूखा का भूखा। ऐसे व्यक्ति को हम पागल कहते हैं। तो देख लिया सब ने अपने-अपने मन को। कम पागल नहीं है यह भी। कितनी बार मन की अवस्था ऐसी बन जाती है जब कि उस के विचारों का कोई एक सिलसिला नहीं रहता, कोई एक तारतम्य नहीं रहता। बिना सिर-पैर की बातों में उलझा रहता है। किसी एक बात का दूसरी से कोई संबंध नहीं, कोई तालमेल नहीं। यह है मन पर छाया हुआ मोह-मूढ़ता का मैल, जिस में उसे सच्चाई का जरा भी होशो हवास नहीं रहता।

मन की एक अन्य अवस्था भी देखी होगी सबने, जिस में कि कुछ देर तक किसी एक ही बात का सिलसिला चलता है, भले वह बात भविष्य की हो या भूत की। पर कुछ देर तक वह सिलसिला तो चलता है। दुनियादारी की भाषा में उसे पागल नहीं कहेंगे, भले आगे चलकर जब सही होश आयेगा तो देखेंगे कि यह व्यर्थ चिंतन भी कम पागल-पन नहीं था। फिर भी इस समय उस गहरे पागलपन की चर्चा नहीं करेंगे। अब तो यह माने कि जब मन सिलसिले वार बात करता है तो पागल नहीं है। तो सबने देखा होगा कि जब मन सिलसिलेवार बात करता है चाहे भूत की करे या भविष्य की तो वह बात प्रिय भी हो सकती है और अप्रिय भी। सुखद भी हो सकती है और दुःखद भी। विगत की कोई याद हो अथवा अनागत कोई कल्पना, वह प्रिय-अप्रिय, सुखद-दुःखद दोनों ही हो सकती हैं। और जब मन में कोई प्रिय चिंतन चलता है तो उसके प्रति एक आकर्षण जागता है और जब कोई अप्रिय चिंतन चलता है तो उसके प्रति विकर्षण। प्रिय बात चाहे भूत की हो अथवा भविष्य की, उसके प्रति मन “चाहिए-चाहिए” करने लगता है। अप्रिय बात चाहे भूत की हो अथवा भविष्य की, उसके प्रति मन “नहीं चाहिए-नहीं चाहिए” करने लगता है। और यह “चाहिए-चाहिए” की प्रतिक्रिया ही तो राग है, “नहीं चाहिए-नहीं चाहिए” की प्रतिक्रिया ही तो द्वेष है। तो सबने देखा कि बात चाहे भूत की हो या भविष्य की, यदि प्रिय है तो मन को राग-रंजित करती है, अप्रिय है तो द्वेष-दूषित करती है।

प्रत्येक साधक ने अनुभव किया होगा कि उसके मन की यह तीन अवस्था बनी ही रहती है। या तो वह मोह-विमूढ़ित रहता है, उसे होशोहवास ही नहीं रहता कि उसके विचारों का कहीं कोई सिर-पैर भी है या नहीं। अथवा राग-रंजित रहता है जब किसी प्रिय का चिंतन करता है। अथवा द्वेष-दूषित रहता है जब किसी अप्रिय का चिंतन करता है। मोह, राग, द्वेष! मोह, राग, द्वेष! यह मन का स्वभाव बन गया है। प्रतिक्षण कितना विकारप्रस्त! कितना मलीन! अन्य सारे मैल इन तीनों से जागते रहते हैं। और यही मन के बिकार मन के मैल से बढ़ते हैं। और यही मन के बिकार मन के मैल हैं, जो व्याकुल रखते हैं, बेचैन रखते हैं। ऐसे विकार-विकलित मन को सुख कहाँ? शांति कहाँ?

क्रमशः... .

स्व. श्री. रांकाजी के पत्र

१) स्व. श्री रिषभदासजी रांका ने बम्बई अस्पताल में पौरुषग्रंथि का आपरेशन होने के तुरंत बाद पू. गुरुजी को लिखा, वह इस प्रकार है :-

आप पधारे और आप से ध्यान के विषय में चर्चा हुई, अच्छा हुआ। चेतना जागृत करने का प्रयत्न शुरू किया।

पहले आपरेशन में तथा उसके बाद काफी खून गया था, इसलिए डॉक्टरों ने इस दूसरे आपरेशन के समय खून देखकर (आपरेशन) करने की सोची, पर ग्लूकोज के सालाइन से काम चल गया।

आपरेशन के दिन ध्यान आसन आदि नैतिक सारे काम किए। ९ बजे आपरेशन के लिए कमरे से निकला। समता का स्वाध्याय और चिंतन करते-करते स्वस्थ चित्त से आपरेशन थियेटर में गया। क्लोरो-फार्म का इंजेक्शन देकर जहां आपरेशन करना था वह जगह बधिर की गई, जिससे आपरेशन और उस जगह को जलाने की क्रिया देखते रहा। आपरेशन होने पर सब को नमस्कार कर आभार माना और जिस स्वस्थ चित्त से आपरेशन थियेटर में गया था, लगभग उसी स्वस्थता से बाहर आया।

सुना और पढ़ा था कि सुख-दुःख को समान रूप से देखा जा सकता है। उसकी अनुभूति प्रत्यक्ष देखने को मिली।

२) अपनी मृत्यु के केवल चार दिन पूर्व उन्होंने पू. गुरुजी को जो पत्र लिखा, वह इस प्रकार है :-

आपका मंगलकामनामय पत्र मिला, अनुग्रहित हूँ। बर्बाद का (बम्बई अस्पताल) का काम कुछ समय के लिए नहीं रहा। दो आपरेशन करने थे, हो गए। अब जखम भरने तक आराम करना है। फिर ७ जनवरी को अस्पताल जांच के लिए आना होगा। तब तक यहाँ ही हूँ। अब तक पेशाब से खून जा रहा है। प्रमाण अल्प है पर धीरे धीरे ठीक होगा। किन्तु जखम भरने के लिए जो एंटीबायोटिक्स की दवाइयाँ दीं, उससे भूल कम लग रही है। शक्ति भरने में कुछ ढील हो रही है।

वैसे मेरा व्यायाम, आसन, ध्यान आदि नियमित चल रहा है आपका विषयना का नया अंक मिला। बहुत बढ़िया आपका लेख है ध्यान स्वास पर करने में जो आपने कहा वह बड़ा ही युक्तिसंगत और उपयोगी है। हमारे बीच स्वानुभव लेने में कोई बाधा नहीं और बाधाएँ डालने वाली बातें—वासना, विकार, विचार आदि निकाल कर सीधा अनुभव लेने की बात साधना में आगे बढ़ाने में मदद रूप है।

मैं उस आधार पर अपने आपको जो कुछ अनुभव आवे, लेने पर ध्यान केंद्रित कर रहा हूँ। वह करने पर जो अनुभव मिलेगा, लिखूंगा। (१)

विषयना के पिछले दो अंक व इस बार का एक अंक मिजवाने की कृपा करें। आप इस समय जो लिख रहे हैं, वह बहुत अच्छा है। पर उस में यदि पुस्तक की दृष्टि से भाषा में कहीं कुछ करना पड़े तो वैसा करने से वह सोने में सुगंध की तरह हो जावेगा। पर आपके ये लेख बड़े महत्वपूर्ण होने से उन पर संस्कार करते समय बहुत सोचना पड़ेगा। क्यों कि भाव में कहीं परिवर्तन न हो, यह बहुत आवश्यक है। यदि कहीं कुछ करना भी पड़ा तो वह बहुत अल्प होगा और संभव है

न भी हो। भाषा को यदि कहीं कसना पड़े तो वह अर्थ को अधिक स्पष्ट होने दे तो ही करूंगा। पर जो कुछ करूंगा, प्रथम आपके पास भेजूंगा। (२)

मुझे तो अब अभ्यास के लिए कुछ मसाला मिल गया। मैं केवल खास कर ध्यान केंद्रित करूंगा। और बीच में कोई पर्दा न रखते अपने आप का अनुभव प्राप्त करने का प्रयत्न करूंगा। (१)

मराठी पुस्तक न मिली तो कोई बात नहीं। वैसे मालती बाई बहुत अच्छी लेखिका हैं। (३)

ह. रिषभदास के प्रणाम

१) - वैसे तो स्व. श्री रांकाजी पिछले तीन वर्ष से विपश्यना के साधक थे और नियमित अभ्यास करते ही थे। परन्तु इन अन्तिम क्षणों में वे विपश्यना की ओर अधिक उन्मुख हुए और तदनुकूल ही अपने दैनिक कार्यक्रम निश्चित किए। यही कारण है कि अन्तिम क्षणों में उनकी समता बड़ी सराहनीय रही और शांतचित्त से पीड़ा-विहीन अवस्था में शरीर छोड़ पाए।

२) - जैसा कि सर्वविदित है, पूज्य गुरुजी की पुस्तक 'धर्म जीवन जीने की कला' का संपादन श्री रांकाजी ने किया और उनका बहुत बहुत बड़ा आग्रह रहा कि पू. गुरुजी के प्रवचनों को भी यथा शीघ्र पुस्तकाकार किया जाय जो कि दुर्भाग्य से अभी तक न हो पाया। इसी प्रकार वे 'धर्म जीवन जीने की कला' का भी अन्य भाषाओं में शीघ्र अनुवाद के पक्षधर रहे।

३) - सौभाग्य से उक्त पुस्तक का मराठी अनुवाद श्रीमती मालतीबाई वेडेकर ने कर लिया है और पुस्तक प्रेस में छपने के लिए मिली गई है।

इगतपुरी में स्वयं शिवीर

क्रमांक	५)	दि. ८-१-७८ से १९-१-७८ तक
"	६)	" २१-१-७९ से १-२-७८ तक
"	७)	" १४-२-७८ से २५-२-७८ तक
"	८)	" २५-२-७८ से ८-३-७८ तक
"	९)	" २३-३-७८ से ३-४-७८ तक
"	१०)	" १६-४-७८ से २७-४-७८ तक
"	११)	" २७-४-७८ से ८-५-७८ तक

१) स्वयं शिविर में केवल वे पुराने साधक ही सम्मिलित हो सकेंगे जो कि विद्यापीठ की अनुशासन-संहिता का कड़ाई से पालन कर सकें।

२) कोई साधक यदि पूरे शिविर में सम्मिलित न हो सके तो वह अपनी सुविधानुसार बीच में कम दिनों के लिए भी सम्मिलित हो सकता है।

३) प्रत्येक अवस्था में आवश्यक है कि व्यवस्थापक से अपना स्थान सुरक्षित रखने की पूर्व स्वीकृति प्राप्त कर ले।

४) यथासंभव प्रत्येक शनिवार-रविवार को पूज्य गुरुजी 'धम्मगिरि' पर उपस्थित रहेंगे। अतः जिस साधक को कोई विशेष कठिनाई हो, उनसे मार्ग-दर्शन प्राप्त कर सकेंगे।

५) स्वयं-शिविर में अन्य सभी सुविधाएँ उपलब्ध रहेंगी।

आगामी शिविर

शिविर क्रमांक १४५ हैदराबाद (वि. अ. सा. के.) दि. ४-२-७८ से १४-२-७८ तक (हिन्दी)

संपर्क :- श्री. रतीलाल एम. मेहता, द्वारा विपश्यना अन्तर्राष्ट्रीय साधना केन्द्र

१२.६ किमी., नागार्जुन सागर रोड, कुसुम नगर, हैदराबाद-५०० ०३५. (फोन-५९२५९)

शिविर क्रमांक १४६ इगतपुरी (वि. वि. वि.) दि. ११-३-७८ से २२-३-७८ तक (अंग्रेजी)

” १४७ ” दि. ५-४-७८ से १६-४-७८ तक (हिन्दी)

” १४८ ” दि. १०-५-७८ से २१-५-७८ तक (अंग्रेजी)

संपर्क : व्यवस्थापक, विपश्यना विश्व विद्यापीठ, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२ ४०३. (फोन नं. ७६)

नोट :- १) कृपया साधना शिविर में शामिल होने से पूर्व शिविर-व्यवस्थापक के पास अपना नाम रजिस्टर करा लें। किसी कारणवश शिविर में सम्मिलित न हो सकते हों तो कृपया पर्याप्त समय रहते सूचित करें ताकि किसी अन्य प्रत्याशी को स्वीकृति दी जा सके।

२) अंग्रेजी शिविर में हिन्दी प्रवचन सुनने हेतु हिन्दी टेप की सुविधा उपलब्ध रहेगी।

३) शिविरों के नियम कड़े होते हैं। उनका कड़ाई से पालन कर सकें तो ही भाग लेना चाहिए।

मेसर्स ब्रह्म भारती उद्योग

३९३, सन इण्डस्ट्रियल इस्टेट, सनमिल कम्पाउंड, सनमिल रोड,
लोअर परेल, बम्बई - ४०० ०१३.

की मंगल कामनाओं सहित।

दूहा धरम रा

मन चंचल, मन चपल है, मन है डांवाडोल।
सांस सांस नै निरखतां, हूज्या सहज अडोल ॥
मन बडबोलो, मन मुखर, मन बाजै ज्यूं ढोल।
सांस सांस नै निरखतां, हूज्या मौन अबोल ॥
कैर चित्त पर आप ही, राग द्वेस का घाव।
अपणो ही अनरथ कैर, पड़ग्यो किसो सुभाव ॥
जद जद प्रिय चिंतन चल्यो, चढ्यो चित्त मैं चाव।
राग जग्यो रोगी हुयो, दुख स्यूं लग्यो लगाव ॥
जद अप्रिय चिंतन चल्यो, उठ्यो द्वेस को दौर।
बादल छाग्या दुख का, उमड़ घुमड़ घनघोर ॥
मोह समायो चित्त में, कैर बेसुधी बात।
कैया मिटसी दुख की, काल अंधेरी रात ॥

दोहे धर्म के

मन चंचल, मन चपल है, भाग रहा सब ओर।
सांस डोर से बांध कर, रोक राख इक ठौर ॥
चित की चाल विचित्र है, झट नभ, झट पाताल।
सांस सांस को देखते, मंद पड़े चित चाल ॥
विचलित मन एकाग्र कर, कर लें दूर विकार।
तो ही बंधन मुक्त हों, मिटे दुखों का भार ॥
स्थूल स्थूल को निरखते, चलें सूक्ष्म की ओर।
सूक्ष्म सूक्ष्मतम देखकर, बड़े मुक्ति की ओर ॥
कितना गहरा राग है, कितना गहरा द्वेष।
मोह-विमूढित चित्त का, गहरा ही दुख क्लेष ॥
देखें अपने राग को, देखें अपना द्वेष।
राग-द्वेष देखें बिना, दुख न होय अशेष ॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए संपादक मुद्रक प्रकाशक : मधु काबरा, सिलवेस्टर बिल्डिंग, २० शहीद भगतसिंह मार्ग बम्बई २३.
टेलीफोन : २६९४११, मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय सातपूर, नासिक ४२२ ००७. टेलीफोन ८२५१
विज्ञापन : आधा पृष्ठ रू. ४००/-, चौथाई पृष्ठ रू. २००/-, वार्षिक शुल्क रू. ५/-, आजीवन शुल्क रू. ५१/-

“विपश्यना”

पो. रजि. नं. NSK/64

प्रेषक :

To

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट

विपश्यना विश्व विद्यापीठ

धम्मगिरि, इगतपुरी, ४२२ ४०३.

(नासिक - महाराष्ट्र)